कामायनी-जयशंकर प्रसाद-श्रद्धा सर्ग पाठ

कौन हो तुम? संसृति-जलनिधि,
तीर-तरंगों से फेंकी मणि एक।
कर रहे निर्जन का चुपचाप,
प्रभा की धारा से अभिषेक?

मधुर विश्रांत और एकांत,
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुंदर मौन,
और चंचल मन का आलस्य।

सुना यह मनु ने मधु गुंजार,
मधुकरी का-सा जब सानंद।
किये मुख नीचा कमल समान,
प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद।

एक झटका-सा लगा सहर्ष,
निरखने लगे लुटे-से,कौन-

गा रहा यह सुंदर संगीत?
कुतुहल रह न सका फिर मौन।

और देखा वह सुंदर दृश्य,
नयन का इद्रंजाल अभिराम।
कुसुम-वैभव में लता समान,
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया, उन्मुक्त।
मधु-पवन क्रीडित ज्यों शिशु साल,
सुशोभित हो सौरभ-संयुक्त।

मसृण, गांधार देश के नील,
रोम वाले मेषों के चर्म।
ढक रहे थे उसका वपु कांत,
बन रहा था वह कोमल वर्म।

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।

खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग।

आह वह मुख पश्चिम के व्योम
बीच,जब घिरते हों घन श्याम,
अरुण रवि-मंडल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम।

या कि, नव इंद्रनील लघु श्रृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत।
एक ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।

घिर रहे थे घुँघराले बाल,
अंस, अवलंबित मुख के पास।
नील घनशावक-से सुकुमार,
सुधा भरने को विधु के पास।

और, उस पर वह मुस्कान,
रक्त किसलय पर ले विश्राम।

अरुण की एक किरण अम्लान,
अधिक अलसाई हो अभिराम।

नित्य-यौवन छवि से ही दीप्त,
विश्व की करुण कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

ऊषा की पहिली लेखा कांत,
माधुरी से भीगी भर मोद।
मद भरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक-द्युति की गोद।

कुसुम कानन अंचल में,
मंद-पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित, परमाणु-पराग-शरीर,
खड़ा हो, ले मधु का आधार।

और, पडती हो उस पर शुभ्र,
नवल मधु-राका मन की साध।

हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब,
मधुरिमा खेला सदृश अबाध।

कहा मनु ने-"नभ धरणी बीच
बना जीचन रहस्य निरूपाय,
एक उल्का सा जलता भ्रांत,
शून्य में फिरता हूँ असहाय।

शैल निर्झर न बना हतभाग्य,
गल नहीं सका जो कि हिम-खंड।
दौड़ कर मिला न जलनिधि-अंक
आह वैसा ही हूँ पाषंड।

पहेली-सा जीवन है व्यस्त,
उसे सुलझाने का अभिमान।
बताता है विस्मृति का मार्ग,
चल रहा हूँ बनकर अनज़ान।

भूलता ही जाता दिन-रात,
सजल अभिलाषा कलित अतीत।

बढ़ रहा तिमिर-गर्भ में नित्य
दीन जीवन का यह संगीत।

क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्‌भ्रांत?
विवर में नील गगन के आज।
वायु की भटकी एक तरंग,
शून्यता का उज़ड़ा-सा राज़।

एक स्मृति का स्तूप अचेत,
ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिंब।
और जड़ता की जीवन-राशि,
सफलता का संकलित विलंब।"

"कौन हो तुम बंसत के दूत,
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन-तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार।

नखत की आशा-किरण समान
हृदय के कोमल कवि की कांत।

कल्पना की लघु लहरी दिव्य,
कर रही मानस-हलचल शांत"।

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति,
मिटाता उत्कंठा सविशेष।
दे रहा हो कोकिल सानंद
सुमन को ज्यों मधुमय संदेश।

"भरा था मन में नव उत्साह,
सीख लूँ ललित कला का ज्ञान।
इधर रही गन्धर्वों के देश,
पिता की हूँ प्यारी संतान।

घूमने का मेरा अभ्यास
बढ़ा था मुक्त-व्योम-तल नित्य,
कुतूहल खोज़ रहा था,व्यस्त
हृदय-सत्ता का सुंदर सत्य।

दृष्टि जब जाती हिमगिरी ओर,
प्रश्न करता मन अधिक अधीर।

धरा की यह सिकुडन भयभीत,
आह! कैसी है? क्या है? पीर?

मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया संदेश महान।
सज़ग हो करता था संकेत,
चेतना मचल उठी अनजान।

बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल-मालाओं का शृंगार।
आँख की भूख मिटी यह देख
आह! कितना सुंदर संभार।

एक दिन सहसा सिंधु अपार,
लगा टकराने नद तल क्षुब्ध।
अकेला यह जीवन निरुपाय,
आज़ तक घूम रहा विश्रब्ध।

यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न,
भूत-हित-रत किसका यह दान।

इधर कोई है अभी सजीव,
हुआ ऐसा मन में अनुमान।

तपस्वी क्यों हो इतने क्लांत?
वेदना का यह कैसा वेग?
आह!तुम कितने अधिक हताश,
बताओ यह कैसा उद्वेग?

हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा की निश्शेष?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग,
तुम्हें,मन में धर सुंदर वेश।

दुख के डर से तुम अज्ञात,
जटिलताओं का कर अनुमान।
काम से झिझक रहे हो आज़,
भविष्य से बनकर अनजान।

कर रही लीलामय आनंद,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।

विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।

काम-मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम"

"दुःख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील,
छिपाये है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।

विषमता की पीडा से व्यक्त,
हो रहा स्पंदित विश्व महान।

यही दुख-सुख विकास का सत्य,
यही भूमा का मधुमय दान।

नित्य समरसता का अधिकार,
उमडता कारण-जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख-मणिगण-द्युतिमान।"

लगे कहने मनु सहित विषाद-
"मधुर मारूत-से ये उच्छ्वास।
अधिक उत्साह तरंग अबाध,
उठाते मानस में सविलास।

किंतु जीवन कितना निरूपाय!
लिया है देख, नहीं संदेह।
निराशा है जिसका कारण,
सफलता का वह कल्पित गेह।"

कहा आगंतुक ने सस्नेह-
"अरे, तुम इतने हुए अधीर।

हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मर कर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन-सत्य,
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।
तरल आकांक्षा से है भरा,
सो रहा आशा का आल्हाद।

प्रकृति के यौवन का श्रृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल।
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र,
आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आंनद,
किये है परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि,
डाल पद-चिह्न चली गंभीर।

देव,गंधर्व,असुर की पंक्ति,
अनुसरण करती उसे अधीर।"

"एक तुम, यह विस्तृत भू-खंड,
प्रकृति वैभव से भरा अमंद।
कर्म का भोग, भोग का कर्म,
यही जड़ का चेतन-आनन्द।

अकेले तुम कैसे असहाय,
यजन कर सकते? तुच्छ विचार।
तपस्वी! आकर्षण से हीन,
कर सके नहीं आत्म-विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ,
खोजते भी नहीं कहीं अवलंब।
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न,
उऋण होऊँ मैं बिना विलंब?

समर्पण लो-सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार।

आज से यह जीवन उत्सर्ग,
इसी पद-तल में विगत-विकार।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।
विश्व-भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुंदर खेल।"

"और यह क्या तुम सुनते नहीं,
विधाता का मंगल वरदान।
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा जय-गान।

डरो मत, अरे अमृत संतान,
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।

पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज।
पड़ा है बन मानव-सम्पत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन-राज।

चेतना का सुंदर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अंकित हो नित्य।

विधाता की कल्याणी सृष्टि,
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।
पटें सागर, बिखरे ग्रह-पुंज,
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।

उन्हें चिंगारी सदृश सदर्प,
कुचलती रहे खड़ी सानंद,

आज से मानवता की कीर्ति,
अनिल, भू, जल में रहे न बंद।

जलधि के फूटें कितने उत्स-
द्वीफ-कच्छप डूबें-उतरायें।
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ-मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसाता रहे उसे सविलास,
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय"।